

चतुर्दशोऽध्यायः
सपत्नीकर्तव्यवर्णनम्
सपत्नीकर्तव्य का वर्णन

ब्रह्मोवाच

प्रोषिते मण्डनं स्त्रीणां पत्यौ मङ्गलमात्रकम्। निष्पादनं च यत्नेन तदारब्धस्य कर्मणः॥ १॥
शय्यागुरुसमीपे स्याद्देहसंस्कारवर्जनम्। शय्यानुपार्जनमर्थानां व्ययानां परिहापणम्॥ २॥
व्रतोपवासतात्पर्यं तद्वार्तापरिमार्गणम्। दैवज्ञेक्षणिकप्रश्नो देवानामुपयाचनम्॥ ३॥
नित्यं तस्यागमाशंसा क्षेमार्थं देवपूजनम्। न चात्युज्ज्वलवेषत्वं न सदा तैलधारणम्॥ ४॥
जातिवेश्म न गन्तव्यं सकामगमनेन च। गुरूणामाज्ञया यावद्भर्तुराप्तजनैः सह॥ ५॥

ब्रह्मदेव कहते हैं- हे ऋषिगण! जब पति प्रवास पर जाये, तब कुलवधू को केवल उन आभूषणों को ही धारण करना चाहिये जो सौभाग्यसूचक होते हैं। वह तब प्रयत्नतः पहले से हो रहे कर्मों को सम्पन्न करे। वह गुरुगण के समीप अपनी शय्या स्थापित करे तथा शरीर पर विशेष शृङ्गार तथा आभूषणादि की सजावट से बचना चाहिये। वह पति के प्रवासकाल में जहाँ तक हो सके प्रत्येक कार्य से धनार्जन का प्रयत्न करती रहे। व्यय को सन्तुलित रखे। वह व्रतोपवास में अधिक निष्ठा रखते हुये पति की कुशलता की खबर पाने के लिये प्रयत्नरत रहे। उसे पति की कुशलता हेतु दैवज्ञ से पूछना चाहिये तथा देवता से भी प्रार्थना करनी चाहिये। वह नित्य उनके आने की कामना रखते हुए उनकी कुशलता तथा मंगलार्थ देवपूजन भी करे। जब तक पति प्रवास से नहीं लौट आता, तब तक वह पड़ोसी तथा जाति के लोगों के यहाँ न जाये। उज्ज्वल वेषभूषा धारण न करे तथा सदैव तैल न लगाये। यदि किसी आवश्यक कार्य से पड़ोसी आदि के यहाँ जाना ही हो तब गुरुगण से आज्ञा लेकर अपने से बड़ों के साथ ही जाये॥ १-५॥

तत्रापि न चिरं तिष्ठेत्स्नानादीन्वापि नाचरेत्। यावदर्थं क्षणं स्थित्वा ततः शीघ्रं समाचरेत्॥ ६॥
आगते प्रकृतिस्थैव कृत्वा तात्कालिकं विधिम्। मुक्तप्रवासने पथ्ये स्नाते भुक्तवति प्रिये॥ ७॥
आत्मानं समलङ्कृत्य सविशेषं मुदान्विता। देवपूजोपहारादीन्दद्यात्प्रागुपपादितान्॥ ८॥

लेकिन वह उनके यहाँ अधिक न रुके तथा वहाँ स्नान, भोजनादि भी न करे। जब तक कार्य हो तभी तक वहाँ रुके तथा यथासम्भव शीघ्र लौट आये। जब पति प्रवास से वापस आ जाये तब अपनी अनुरक्ति के साथ उनको समादृत करके सत्कार करके प्रवास वाले वस्त्रादि को उतार कर उनके स्नान एवं भोजन के पश्चात् प्रसन्नता के साथ स्वयं को अलंकारादि से सज्जित करे। पहले से ही मनींती माँगे देवगण को उपहारादि से सम्पन्न करे॥ ६-८॥

कनिष्ठामातृवज्ज्येष्ठां तदपत्यानि चात्मवत्। पश्येत्तत्परिवर्गं तु नित्यं स्वपरिवर्गवत्॥ ९॥
तत्पुत्रोनासने तिष्ठेत्पतिं नामन्त्रयेत च। तदभिप्रायतः कुर्यात्प्रवृत्तिं सर्वकर्मसु॥ १०॥

न संसृजेत तदिद्वष्टैः सख्यं कुर्वीत तत्प्रियैः। जनमाप्ततमं तस्य सदाभर्तुश्च मानयेत् ॥ ११ ॥
पैतृकात्समुपानीतं वसुसौगन्धिकादिकम्। तस्मै निवेद्यात्मतया तदा तदुपयोजयेत् ॥ १२ ॥

कनिष्ठ कुलवधू अपनी ज्येष्ठ सौत के साथ मातृवत् व्यवहार करे तथा उसकी सन्तान को अपनी सन्तान समझे। उसके परिवार तथा मित्रों को भी अपने नौकर तथा भृत्य माने। वह ज्येष्ठ सौत के सामने न तो आसन पर बैठे, न पति को अपने पास बुलाये। उनके अभिप्राय को जाने तब सोच-विचार कर सर्वकार्य प्रवृत्त हो जाये। पति का जिससे द्वेष हो उनसे कभी भी सम्बन्ध न रखे। उनके प्रियजनों के साथ स्वयं भी सौख्य रखे। पति के जो गुरुजन हों, उनका सदैव आदर करना चाहिये। अपने पितृगृह से आई सामग्री, खाने-पीने तथा शृङ्गार की सुगन्ध आदि समस्त सामग्री को आत्मभावना से उनको प्रस्तुत करे तत्पश्चात् अपने उपयोगार्थ रख ले ॥ ११-१२ ॥

सोऽपि तत्प्रीतये किञ्चिदादद्यादल्पमूल्यकम्। संगोप्य मातृवत्स्थेयं तत्तथैवोपयोजयेत् ॥ १३ ॥
तत्प्रीत्यर्थं गृहीतं यद्वैलक्ष्यादिनिवृत्तये। सविशेषं प्रसङ्गेन तस्यैतत्प्रतिपादयेत् ॥ १४ ॥
स्त्रीणां यदेतत्सापत्यं परं मात्सर्यकारणम्। तस्मात्तत्परिहर्तव्यं परमोदारचर्यया ॥ १५ ॥

छोटी सौत की लज्जा आदि को कम करने हेतु होना यह चाहिये कि पहले जो कुछ ज्येष्ठ सौत ने लिया था, अनुकूल समय आने पर ज्येष्ठ सौत को उसमें अपना भी कुछ मिलाकर उसे देना चाहिये। सौतों में जो पारस्परिक दुःख तथा मत्सर के कारण बन जाते हैं, वे सब कारण ऐसी उदारवृत्ति के ही कारण दूरीभूत हो जाते हैं। अतः ऐसे ही प्रयत्न करें ॥ १३-१५ ॥

तथा कल्पितनेपथ्या भर्तुः पर्यायवासरे। ह्रियमादयमानेव पतिं गच्छेद्विसर्जिता ॥ १६ ॥
गत्वा रहसि भर्तारं तत्कालोचितसम्भ्रमैः। तद्भावानुगतैस्तैस्तैः सविशेषमुपाचरेत् ॥ १७ ॥
प्रतिबुध्य ततः काले सविशेषं त्रपान्विता। ज्येष्ठाय वसतिं गच्छेद्विशेषेण तथा पुनः ॥ १८ ॥
अप्रातिकूल्यं ज्येष्ठाय हितमन्यत्र योषितः। ततः शनैस्त्ववच्छिद्य पतिं स्ववशमानयेत् ॥ १९ ॥

जब उस कनिष्ठ सौत की बारी अपने पति के पास जाने की आये तब अनेक शृङ्गारादि करके तथा विधिवत् अलंकृत होकर अपनी सौतों से अलग होकर लज्जा प्रकट करती पतिकक्ष में जाना चाहिये। एकान्त में पतिकक्ष में जाकर उचित हास्य-विलास तथा हावभाव से पति की जैसी इच्छा हो उस प्रकार उसे सन्तुष्ट करे तथा प्रातः शय्या से उठकर सलज्ज रूप से ज्येष्ठ सौत के पास आकर वहाँ से अपने कक्ष में जाये। बाह्य कार्यों में ज्येष्ठ सत्पनी का विरोध न होने पर वधू की हितसिद्धि होती है। अन्य स्थान पर एकान्त में वह शनैः-शनैः पति की इच्छा के अनुरूप आचरणों से पति को वश में रखे ॥ १६-१९ ॥

बहिष्पाकादियोगेन चतुःषष्ट्या रहोगतम्। ज्येष्ठामतिशयानेव भर्तारमुपरञ्जयेत् ॥ २० ॥
प्रागल्भ्यं रहसि स्त्रीणां लज्जाधिव्यं ततोऽन्यदा। चित्तज्ञानानुवृत्तिश्च पत्यौ संसेवनं परम् ॥ २१ ॥
एवमाराध्या भर्तारं गृहमाक्रम्य च क्रमात्। गौरवं प्रतिपत्तिं वा ज्येष्ठादिषु न हापयेत् ॥ २२ ॥
गृहव्यापारदानेषु पतिं गूढं तथा वदेत्। अधिकुर्यादनिच्छन्ती ज्येष्ठैवेनां यथा बलात् ॥ २३ ॥

अच्छे भोजनादि की व्यवस्था करके अपने अन्तःपुर में ६४ कलाओं की अपनी निपुणता से कनिष्ठ वधू ज्येष्ठ सौत को भी पछाड़ कर पति को सन्तुष्ट करके अपने अधीन कर लेती है। एकान्त स्थल में पति के साथ भले ही ढिठाई का व्यवहार करे, तथापि अन्यत्र लज्जा को ही अपना भूषण बनाये। पति की सेवा में लगी रहकर सफल हो जाये। जिस क्रम से (सौत की जिस संख्या में वह हो जैसे द्वितीय-तृतीय इत्यादि) वह पतिगृह आई हो, तदनुरूप क्रमानुसार वह ज्येष्ठ आदि की गरिमा का हनन न करे। घरेलू कार्यार्थ तथा दानादि सत्कार्य हेतु पति से गुप्त रूप से बातें करे। बाह्यतः इच्छा भले ही प्रकट न करे तथापि वह ज्येष्ठ सौत की ही तरह पति को अपने अनुकूल बना ले ॥ २०-२३ ॥

सापि विज्ञाय भर्तारं कनिष्ठाकृष्टमानसम्। विश्रामं प्रार्थयेदेनामधिकुर्यात्सुतामिव ॥ २४ ॥

मत्वा भर्तुरभिप्रेतं रक्षन्ती निजगौरवम्। कृतं भर्त्रनुकूलं स्यात्तदिष्टायानुमोदयेत्॥ २५॥
 स्वामिनो यदभिप्रेतं भृत्यैः किं क्रियतेऽन्यथा। क्लिश्यते तत्र मूढात्मा परतन्त्रो वृथा जनः॥ २६॥
 तस्मात्सर्वास्ववस्थासु मनोवाक्कायकर्मभिः। हितं स्वाम्यनुकूलत्वं नारीणां तु विशेषतः॥ २७॥

ज्येष्ठ कुलवधू जब यह जान जाय कि पति अब कनिष्ठ सौत के प्रति अनुरक्त हो गया है तब वह उस सौत के साथ पुत्री जैसा व्यवहार करे। उसके विश्राम आदि की व्यवस्था करती रहे। पति के मनोगत भाव को जानकर तथा आत्मगौरव, समाज एवं गृह की मर्यादा के अनुरूप कार्य सम्पन्न करे। वह पति की इच्छानुसार समस्त कार्य सम्पन्न करके उनकी ही इच्छा का ही अनुमोदन करे। जो कार्य स्वामी चाहते हों, वह स्वयं करे। वह कार्य यदि भृत्य करते हैं, तब वह सन्तोषप्रद नहीं होगा। जो वधू ऐसा नहीं कर पाती, वह मूढ़ सदा परतन्त्र रहकर क्लेशभागी होती है। सर्वावस्था में मन, वाणी, कर्मणा पति के अनुकूल तथा हितकारी कृत्यों को ही करे। स्त्री इसका विशेष ध्यान रखे॥ २४-२७॥

सापि ज्येष्ठापतिं चैव गृहतन्त्रं च सर्वदा। समावर्ज्य गुणैर्धरि प्रागवस्थां न विस्मरेत्॥ २८॥
 न सौभाग्यमदं कुर्यान्न चौद्धत्यादिविक्रियाम्। नितरामानतिं गच्छेत्सदानार्यभयादिवा॥ २९॥
 यथा योग्यतया पत्यौ सौभाग्यमभिवर्धते। स्पर्धयेच्च कुलस्त्रीणां प्रश्रयोपाधिकं तथा॥ ३०॥
 एवमाराध्य भर्तारं तत्कार्येष्वप्रमादिनी। पूज्यानां पूजने नित्यं भृत्यानां भरणेषु च॥ ३१॥
 गुणानामर्जने नित्यं शीलवत्परिरक्षणे। प्रेत्य चेह च निर्द्वन्द्वं सुखमाप्नोत्यनुत्तमम्॥ ३२॥

॥ इति श्रीभविष्यमहापुराणे शतार्धसाहस्र्यां संहितायां ब्राह्मे पर्वणि
 सपत्नीकर्तव्यवर्णनं नाम चतुर्दशोऽध्यायः॥ १४॥

जब पति कनिष्ठा सौत के प्रेमपाश में बद्ध हो जाये तब ज्येष्ठ वधू सदगुणों से सदैव पति का मनोभाव तथा गृहकार्य के प्रति यथाशक्ति अनुकूल कार्य करती रहे तथा अपनी पूर्वावस्था को न भूले। तब अपने सौभाग्य पर भूलकर भी गर्व न करे। उद्धत व्यवहार अथवा चांचल्य का प्रदर्शन न करे। वह कार्यभार से व्यस्त सी तथा विनम्रता का प्रदर्शन करते सभी कार्य सम्पादित करती रहे। जिस तरीके से तथा जिस कुशलता से पति को अपने प्रति अनुकूल करके सौभाग्य वृद्धि हो, उसके लिये पत्नियाँ (सहपत्नियाँ) आपस में स्पर्द्धा भी करे। उसी प्रकार के अच्छे गुणों को प्रश्रय देती रहे। पति के कार्य तथा सेवा में सावधानी के साथ व्यवहार करके तथा पूज्यों का पूजन करके भृत्यों का पालन कुशलता से करे। वह सदैव सदगुणों के पालन तथा उनकी रक्षा में लगी रहे। ऐसी कुलवधू इहलोक, परलोक, दोनों में परमानन्दानुभव करती है॥ २८-३२॥

॥ श्रीभविष्यमहापुराण शतार्ध साहस्री नामक संहिता के ब्राह्मपर्व में
 सपत्नीकर्तव्य क्का वर्णन नामक चौदहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १४॥